National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040
Impact Factor: RJIF 5.22
www.nationaljournals.com
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 701-702

नस्लवाद विरोधी आन्दोलन से दलित वैचारिकी और साहित्य का अंतर्संबंध

साक्षी सिंह

पीएचडी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, भारत

प्रस्तावना

दलित आन्दोलन और साहित्य के आधार स्तम्भ महात्मा ज्योतिबा फुले अपनी कालजयी रचना 'गुलामगीरी' को अमेरिकी अश्वेत दासों के मुक्ति आन्दोलन को समर्पित करते हुए लिखते हैं कि; "अमेरिकी लोगों नें आज, सैकड़ों साल से चली आ रही अमानवीय परम्परा को समाप्त करके ग़रीब, अनाथ लोगों को उन चंट लोगों के ज़ुल्म से मुक्त करके उन्हें पूरी तरह से सुख की ज़िंदगी बख्शी. इन बातों को जान कर शूद्र-अतिशूद्रों को अन्य लोगों की तुलना में बहुत ही ज़्यादा ख़ुशी होगी क्योंकि, ग़ुलामी की दशा में ग़ुलाम लोगों को, ग़ुलाम जातियों को कितनी यातनाएं बर्दाश्त करनी पड़ती हैं, इसे स्वयं अनुभव किये बिना अंदाज़ा करना ना मुमकिन है. जो सहता है, वही जानता है."(ग़ुलामगीरी, ज्योतिराव फुले, अनुवाद- डॉ. विमलकीर्ति,सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-१७).....स्पष्ट है कि, महात्मा फुले अश्वेतों की पीड़ाओं को भी समझते थे क्योंकि वे अमेरिकी-अफ्रीकी अश्वेतों एवं भारतीय दलितों की पीडाओं में साम्य देख रहे थे और अश्वेत आन्दोलन से प्रभावित भी थे.

नस्लभेदी नीति का इतिहास काफ़ी पुराना है, इसकी शुरुआत श्वेत नस्ल की उपनिवेशवादी शक्तियों द्वारा विषुवत रेखीय अश्वेत नस्ल वाले प्रदेशों में अपने उपनिवेश स्थापित करने से मानी जा सकती है. औपचारिक रूप से नस्लभेद का आरम्भ डच उपनिवेशवादियों द्वारा १६५२ में केपटाउन को अपने रिफ्रेशमेंट सेंटर के रूप में स्थापित करने से माना जाता है (विकिपीडिया), तत्पश्चात अन्य यूरोपीय शक्तियां भी अफ्रीका के तटवर्ती क्षेत्रों तक पहुँचती गयी और वहाँ के जनजातीय लोगों पर बहुत ही सरलता से अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया. सोलहवीं शताब्दी उत्तरमध्य काल से अमेरिका, जो कि ब्रिटिश उपनिवेश था, में अफ्रीका से नीग्रो नस्ल का आयात आरम्भ हुआ, जिसने नीग्रो दासता और नस्लभेद को और भी बढ़ावा दिया.

१९वीं शताब्दी के मध्य तक यूरोप नें, विश्व के लगभग सभी महाद्वीपों के किसी ना किसी हिस्से पर अपना अधिकार जमा कर वहाँ अपना उपनिवेश स्थापित कर लिया था. जो भी हिस्से उनके उपनिवेश बनते गए वहाँ पहले से रह रहीं नस्लें उनके अधीन हो कर 'निम्न' होती चली गयीं और शासकवर्ग की सफ़ेद नस्लें 'उच्चता' की श्रेणी में विराजमान होती चलीं. दक्षिण अमरीका से लेकर अफ्रीका, भारत तक, हर जगह के काले-सांवले लोगों का ना सिर्फ रंग दोयम दर्जे का माना जाने लगा बल्कि उनकी और पूरी जीवन शैली व सामाजिक ढाँचे को नीच और असभ्य घोषित कर अंग्रेजों नें ये ऐलान किया कि; ये असभ्य काले लोग सिर्फ शासित होने के ही लिए नहीं है, बल्कि इन जंगली लोगों को गुलाम बनना चाहिए, जिससे कि ये अंग्रेजों के अनुशासन में रह कर सभ्य हो सकें.....इस क्रम में उन्होंने 'व्हाइट मेन बर्डन थियरी' का विकास किया, जिसके तहत ये लक्षित किया गया कि श्वेत नस्ल के लोग सभ्य होते हैं और विषुवतरेखीय प्रदेशों के अश्वेत निवासी असभ्य, इसलिए गोरे लोगों के कन्धों पर ये बोझ है कि वे इन काले लोगों को सभ्य बनाएं.

हालाँकि, विभिन्न राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक कारणों से उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के मध्य १८६१ से १८६५ तक चले गृहयुद्धों और उसके एकीकरण के बाद दासप्रथा को औपचारिक रूप से तो समाप्त कर दिया गया किन्तु अश्वेतों के प्रति श्वेत लोगों के भीतर भरी घृणा और हिकारत में कोई विशेष तब्दीली नहीं आई. अर्थात यह स्वतंत्रता महज औपचारिक थी. इस सन्दर्भ में डॉ. शरणकुमार लिंबाले का एक कथन उल्लेखनीय है. वे लिखते हैं कि; "न्यूयार्क में, सन १७०६ में ऐसा क़ानून बना था जिसमें क्रिश्चियन बनने पर भी नीग्रो की ग़ुलामी समाप्त नहीं होगी. ग़ुलाम स्वतंत्र नागरिक के विरूद्ध गवाही नहीं दे सकते. क्रिश्चियनों के मन में भी कहीं तो मनु ही होगा क्योंकि मनु की भी ऐसी व्यवस्था है कि उच्च वर्ण के विरुद्ध दास शूद्र की गवाही, प्रमाण के स्वरुप में ना मानी जाए."(दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, शरणकुमार लिंबाले, अनुवाद- रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- ८७).

भारत में दलितों के सन्दर्भ में भी परिस्थियां ऐसी ही रहीं. अंग्रेजों और इसाई मिशनरियों के आगमन के बाद से इन्हें शिक्षा सम्बन्धी कुछ अधिकार दिए गए, जिससे इस समुदाय को लाभ भी मिले, किन्तु ये अधिकार और लाभ सदियों से स्थापित जाति एवं वर्ण व्यवस्था को ख़त्म कर पाने के लिए पर्याप्त साबित नहीं हो पाए. भारतीय जनमानस में अभी भी शूद्रों-अतिशूद्रों के लिए तिरस्कार और घृणा का भाव यथावत बना रहा. संविधान निर्माताओं नें डॉ आंबेडकर के निर्देशों पर इस गंभीर समस्या को समाप्त करनें के लिए संविधान में कई ऐसे प्रावधान रखे हैं जिनमें दलितों के प्रति हो रहे दोयम दर्जे के व्यवहार को समाप्त किया जा सके और उनके हितों और अधिकारों को संरक्षित किया जा सके. तत्पश्चात मंडल कमीशन के द्वारा भी पिछड़े वर्गों को सरकारी सेवाओं और शिक्षा में उनकी स्थिति को बराबर करनें के प्रयास में आरक्षण के प्रावधान किये गए. किन्तु इन सबके बावजूद भारतीय समाज में दलितों के प्रति समता का भाव नहीं आ सका है. इस स्थिति के पीछे दलित चिंतकों का ये आरोप है कि संविधान सभा या सरकार में डॉ अम्बेडकर को स्थान देना सवर्णवादियों, नेहरू तथा अन्य समाजवादियों की एक साजिश थी. मराठी दलित विचारक एवं साहित्यकार आनंद तेलतुम्बड़े कहते हैं कि; "अम्बेडकर के संविधान निर्माण में मुख्य भूमिका में आनें और नेहरू के मंत्रिमंडल में शामिल होनें से, ऊँचे सिद्धांत, जो दलित आन्दोलन के आधार बनते, पृष्ठभूमि में चले गए. हालाँकि अम्बेडकर का अपने लोगों के प्रति समर्पण कम नहीं हुआ लेकिन उद्देश्यों की प्राप्ति में समझौता करना पड़ा. अम्बेडकर के सारे विरोध के बावजूद, दलित आन्दोलन शासक वर्ग की संसदीय

राजनीति के भंवर में फंसकर कमज़ोर हो गया."(जनवादी समाज और जाति का उन्मूलन, आनंद तेलतुम्बड़े, सम्पादक- रूबीना सैफी, आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा, पृष्ठ संख्या-३३)

दलित और नीग्रो दोनों ही समुदायों को शोषण से वास्तविक मुक्ति के लिए लगातार संघर्ष करनें पड़े हैं जो कि अब तक जारी है. उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका एकीकरण के पश्चात दास प्रथा मुक्ति के नाम पर यूरोपियों नें नीग्रो लोगों के साथ जो छल किया था उसके सन्दर्भ में अल्जीरियाई अश्वेत मुक्ति आन्दोलन के योद्धा फ्रान्ज फैनन लिखते हैं कि; "यह तीसरी दुनिया के नए इतिहास की शुरूआत से जुड़ा सवाल है. यह इतिहास उन अजीब शोधों का भी सम्मान करेगा जो कभी यूरोप द्वारा प्रस्तुत किए गए थे.....लेकिन हम यूरोप के अपराधों को नहीं भूलेंगे. इन अपराधों में सबसे भयावह वे हैं जिसे लोगों ने मानसिक स्तर पर अंजाम दिया है.....जहां सामूहिकता के दायरे में सामाजिक विभेदन और स्तरण था एवं वर्गों के बीच खूनी तनाव था. इतना ही नहीं मानवता के विशाल पैमाने पर नस्लीय घृणा, गुलामी, शोषण था और इन सबसे ऊपर वह रक्तहीन नरसंहार था जिसमें करोड़ों लोगों को उपेक्षित छोड़ दिया गया था." (फ्रान्ज फैनन कि रचना, द रेचेड ऑफ़ द अर्थ का एक अंश, साभार- hashiya.blogspot.in).

नीग्रो मुक्ति आन्दोलन और जाति तोड़क आन्दोलन, भले ही दो भिन्न-भिन्न देशकाल एवं परिस्थियों उत्पन्न हुए एवं आगे बढ़े किन्तु दोनों का ही उद्देश्य दमित समुदाय के हक व हुकूक की लड़ाई लड़ना रहा है. दोनों ही समुदायों के जीवन और मरण की परिस्थियां अत्यंत भयावह थी. इसीलिए हम देखते हैं कि दोनों नें मुक्ति के लिए जो साधन चुनें उनमें बहुत समानता है. शोषक समाज और सत्ता का सामना करनें के लिए दोनों नें कई कई आन्दोलन खड़े किये, आंदोलनों का भी दमन किया गया किन्तु फिर भी ये आन्दोलन गिरते-उठते ज़ारी हैं और जनता से जुडाव के लिए इन्होने कला के विभिन्न माध्यमों को हथियार बनाया, जिनमें साहित्य सबसे कारगर और उपयुक्त साबित हुआ. नीग्रो लोगों नें अपनी पीड़ाओं की अभिव्यक्ति के लिए कहानी, ब्लूज, बैलेड, नाटक आदि साहित्यिक माध्यमों को चुना तो दलित आंदोलनकारी व विचारकों नें भी अपनी वेदना के स्वरों को आत्मकथा, कहानियों, कविताओं आदि में पिरोया और इनके सद्-चित-वेदना के स्वर और अभियक्तियाँ राज्य और देश की तमाम सीमाओं को पार करती हुई हर पीड़ित और शोषित की आवाज़ बन गयीं. फ्रान्ज फैनन की ही एक और उक्ति यहाँ उल्लेखनीय है कि; "जन-मानस के संपर्क से जन्म लेने वाले आंदोलन, जीवन के संगीत से भरे होते हैं. कल्पना और स्वप्न का विकास, शारीरिक सीमाओं का अतिक्रमण कर देता है. हर बार जब कथावाचक किसी नए घटनाक्रम को जन-मानस के साथ जोड़ता है तो उस समय वह एक यथार्थ चेतना का आवाहन कर रहा होता है. एक नए किस्म के मनुष्य की उपस्थिति, जन-मानस के समक्ष प्रस्तुत होती है. ऐसे वक्त में वर्तमान अपने लिए आश्रय नहीं खोजता बल्कि हर ओर अपने को बिखेर देता है". (फ्रान्ज फैनन कि रचना, द रेचेड ऑफ़ द अर्थ का एक अंश, साभार- hashiya.blogspot.in).

सन्दर्भ सूची

1. ग़ुलामगीरी, पृष्ठ संख्या-१७.
2. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या- ८७.
3. जनवादी समाज और जाति का उन्मूलन, पृष्ठ संख्या-३३.
4. फ्रान्ज फैनन कि रचना, द रेचेड ऑफ़ द अर्थ का एक अंश, साभार- hashiya.blogspot.in
5. फ्रान्ज फैनन कि रचना, द रेचेड ऑफ़ द अर्थ का एक अंश, साभार- hashiya.blogspot.in.
6. ग़ुलामगीरी, ज्योतिराव फुले, अनुवाद- डॉ. विमलकीर्ति,सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली
7. जनवादी समाज और जाति का उन्मूलन, आनंद तेलतुम्बड़े, सम्पादक- रूबीना सैफी, आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा
8. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, शरणकुमार लिंबाले, अनुवाद- रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
9. दलित दृष्टि, गेल ओमवेट, अनुवाद-रमणिका गुप्ता एवं अक़ील कैश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
10. उत्तर औपनिवेशिकता के श्रोत और हिंदी साहित्य, डॉ. प्रणय क्रिशन श्रीवास्तव, हिंदी परिषद् प्रकाशन, इलाहबाद
11. दलित साहित्य और विमर्श के आलोचक, कँवल भारती, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली